Cosmos Multidisciplinary Research E-Journal
Online Available at www.cmrj.in
Recognized International Peer Reviewed Journal
Impact Factor 5.69
ISSN No. 2456-1665

भारतीय समाज पर भारतीय भाषाओं के यथोचित संस्कार

डॉ. विनि विकास ढोमणे

सहायक प्राध्यापक

हिंदी विभाग प्रमुख

जे. ऍम. पटेल कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय,

भंडारा ४४१९०४

भारतीय भाषाओं का समाज पर गहरा और बहुआयामी प्रभाव पड़ता है, जो सांस्कृतिक, सामाजिक और व्यक्तिगत स्तरों पर परिलक्षित होता है। भाषा किसी भी समाज की पहचान का सबसे बड़ा प्रमाण है। भारतीय भाषाएँ सदियों से अपनी विविध संस्कृतियों, परंपराओं, और जीवन-मूल्यों को सहेज कर रखती आई हैं। हर क्षेत्रीय भाषा अपने साथ एक विशेष सांस्कृतिक विरासत लिए हुए है, जिसमें लोक कथाएँ, गीत, कलाएँ और रीति-रिवाज शामिल हैं। भारतीय भाषाएँ प्राचीन सभ्यताओं, आक्रमणों और आदान-प्रदान के सार को संरक्षित करती हैं। संस्कृत जैसी भाषाएँ, जो कई भारतीय भाषाओं की जननी मानी जाती हैं, वेदों, उपनिषदों और अन्य प्राचीन ग्रंथों के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा को जीवंत रखती हैं।

भाषा समुदायों को आपस में जोड़ती है। जब लोग अपनी मातृभाषा में संवाद करते हैं, तो एक गहरा भावनात्मक जुड़ाव स्थापित होता है। भाषा समाज के विभिन्न स्तरों और समूहों के बीच संवाद का माध्यम बनती है। यह लोगों को अपने विचारों, भावनाओं और अनुभवों को साझा करने में मदद करती है, जिससे सामाजिक एकजुटता बढ़ती है। इसके बावजूद, भारत की बहुभाषिकता एक अनोखा अवसर भी प्रदान करती है। कई भाषाओं का ज्ञान संज्ञानात्मक क्षमताओं (स्मृति, समस्या-समाधान) को बढ़ाता है और सामाजिक-भावनात्मक कौशल (सहानुभूति, अंतरसांस्कृतिक क्षमता) को विकसित करता है। इस प्रकार भारतीय भाषाएँ केवल संवाद का माध्यम नहीं हैं, बल्कि वे समाज के ताने-बाने, पहचान, इतिहास और भविष्य को भी आकार देती हैं। उनके संरक्षण और संवर्धन से न केवल सांस्कृतिक विविधता बनी रहती है, बल्कि यह एक मजबूत और एकजुट समाज के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भाषाओँ के माध्यम से भारतीय समाज पर भारतीय भाषाओं के संस्कार किस प्रकार पड़े है, यह हमारे अध्ययन का विषय है। एक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि होने की वजह से भारतीय भाषाओं की

पारस्परिकता बराबर बनी हुई हैं। कहा जाता है- यह दो पैरोवाला जीव उसी वक्त आदमी बना जब उसने बोलना सीखा।.. समाज की बुनियाद भाषा है।.. भाषा का सीधा संबंध हमारी आत्मा से है।.. भाषा हमारी आत्मा का बाहरी रूप है।.. उसके एक एक अक्षर में हमारी आत्मा का प्रकाश हैं। भाषा सदियों तक हमारा साथ देती रहती है और जितने लोग हमजबान है, उसमें एक अपनापन, एक आत्मीयता, एक निकटता का भाव जगाती रहती है। मनुष्य में मेल डालने वाला रिश्ता भाषा का है।"१

भारत ही एक ऐसा देश है जिसमें अनेक भाषा-भाषी लोग है। यहां पर किसी एक भाषा के वर्चस्व के स्थान पर अनेक भाषायें मुख्य रूप से बोली जाती हैं, जिसका व्यापक प्रभाव भारतीय मनों पर है। अतः आत्मकथा के माध्यम से हमें आधुनिक काल में भाषाओं का प्रभाव दृष्टिगोचर होता ही है साथ ही कुछ आत्मकथाकरों ने आदिकाल से अब तक कैसे कैसे भाषा में परिवर्तन हुये तथा किस भाषा का कितना प्रभाव रहा? कौन सी भाषा पर वर्चस्व रहा? लोग आत्मीयता से किन भाषाओं से जुड़े रहे? इन सब का ब्यौरा विभिन्न आत्मकथाओं से मिलता है।

विभिन्न साहित्य के माध्यम से व्यापक भारतीय समाज पर भारतीय भाषाओं के यथोचित संस्कारों में आदिकाल से आधुनिक काल तक हुये परिवर्तन को जानेंगे। भारत में प्राचीन आर्यो की भाषा का वास्तविक रूप क्या रहा होगा यह कहना या जानना बहुत ही कठिन है। आर्यो की प्राचीनतम प्राप्य आर्य पुस्तक "ऋग्वेद" की रचना एक ही समय अथवा एक ही स्थान पर नहीं हुई इसलिये उसकी भाषा के आधार पर भी कोई मत निर्धारित करना संभव नहीं। पर यह अवश्य कहा जाता है कि उस काल में भाषा का कोई रूप स्थिर न था और वह राष्ट्रीय न होकर प्रादेशिक थी अर्थात उसमें एक समुदाय की भाषा जैसी एकरूपता न होकर भिन्न भिन्न वर्गो और क्षेत्रों की भाषा जैसा बिखरापन था। पर धीरे धीरे भाषा ने टकसाली रूप धारण किया और वह संस्कृत भाषा बन गयी। जो स्थान आजकल हिन्दी को मिला हुआ है और प्राकृत काल में जो महाराष्ट्री को प्राप्त था।

आदिकाल में संस्कृत भाषा साहित्य की मुख्य व उच्च श्रेणी की भाषा समझी जाती थी। किन्तु बोलचाल में इसका प्रयोग नहीं के बराबर था। इस भाषा में उच्चकोटि का साहित्य होने के कारक संस्कृत लोगो के लिये हमेशा पूज्यनीय रही। पहले पाठशालाओं में भी इसका विशेष महत्व रहता था। घर पर पहले पूजा-पाठ में धार्मिक ग्रंथों का पाठ आवश्यक होने के कारण लोगो को भी संस्कृत का ज्ञान होता गया। प्रातः काल व संध्या को श्लोक का पाठ आवश्यक मानने के कारण लोगो को और बच्चों को भी थोड़ा ज्ञान रहता था। जैसे राहुल सांकृत्यायन अपने पिता के संबंध में लिखते है कि- "संध्या को हमारे गाँवो में संस्कृत को पंडितों की चीज समझा जाता था और हमारे पिता संस्कृत के पंडित न थे। उनके पाठ में हनुमान- बाहुक और रामायण शामिल थे। उन्हें सिर्फ एक महिने किसी भूले-भटके मुंशी से क, ख सीखने का मौका मिला था, किन्तु न जाने कैसे उन्होंने रामायण ही नहीं,

भिन्न, गुणा-भाग सूद और पैमाइश के हिसाब को भी सीख डाला था।"२ संस्कृत भाषा के संस्कार ही ऐसे थे कि जिनको नहीं भी आती थी वे भी संस्कृत ग्रन्थ का वाचन ही नहीं करते, उसे पढ़कर गौरव का अनुभव करते थे।

स्वातंत्र्यपूर्व दलित समाज को संस्कृत पढ़ने का हक नहीं होता था, उन्हें पाठशाला में भी नहीं पढ़ने देते, हिन्दू इसे अपनी पवित्र व धार्मिक ग्रंथ की भाषा रूप में मानते थे। यह विशेष रूप से ब्राम्हणों की ही भाषा थी। किन्तु जब मुसलमानों ने भारत में प्रथम राज्य की स्थापना की, तब नए और अपरिचित राज्य की व्यवस्था का भार उन पर पड़ा। आक्रमण करके राज्यों को जीतना और बात हैं, किसी देश के भू-भाग पर शासन करना दूसरी बात। वे अरब योद्धा थे, परंतु विदेशी थे, न इस देश की भाषा जानते थे, न संस्कारों से परिचित थे। बाद में अलाउद्दीन ने ब्राम्हणों के सामने प्रस्ताव रखा - कि वे फारसी पढ़े, और राज्य का कारोबार फारसी भाषा में करे, परंतु ब्राम्हणों ने म्लेच्छ भाषा पढ़ना स्वीकार न किया, स्वीकार किया कायस्थों ने। तब से मुगल राज्य के अन्त तक हिन्दुओं में कायस्थ ही हर मुसलमानों के बाद सार्वोपरि राज्य कारबारी रहे। वे फारसी के पूरे पंडित बने, यहाँ तक कि शिक्षा, संस्कृति रहन -सहन में वे मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच की कड़ी बन गए। सभ्य सम्पन्न मुसलमान राजवर्गो जनों के समान उनका रहनसहन, खान-पान हो गया। केवल धर्म और जाति अवश्य हिन्दू रहीं।"३

जहाँ तक संस्कृत का प्रश्न था संस्कृत का रूप अत्यंत व्यवस्थित, स्थिर और अपरिवर्तनशील हो जाने के कारण उसमें जो जड़ता आयी उससे यह बंध्या होकर रह गयी, किन्तु जनता की सहचरी प्राकृत भाषा संतानवती होती चली गयी। संस्कृत एवं प्राकृत दो अलग-अलग भाषाएँ न थी अंतर केवल यही था कि प्राकृत बोलचाल की भाषा थी, जो पीछे परिमार्जित होकर संस्कृत रूप में प्रयुक्त होने लगी थी। जिस तरह काशी में पठन पाठन के लिये संस्कृत ग्रंथ बहुत प्रचलित रहे है। चतुरसेन शास्त्री काशी के पाठशाला का वर्णन करते हुये लिखते है। "दस बीस विद्यार्थी नंगे बदन धोती पहिने जनेऊ धारण लिये मस्तक पर तिलक छाप लगाए अपने गुरू के सम्मुख चटाइयों पर पलौथी मारे बैठे रघुवंश, हितोपदेश, पंचतंत्र अष्टाध्यायी, लघुकौमुदी, अमरकोष, ज्योतिषशास्त्र आदि संस्कृत पुस्तकों का पाठ पढ़ते दीखते थे।"४ किन्तु संस्कृत के अत्यंत जड़ता व कठिनता के कारण पहली प्राकृत या पाली बोलचाल की भाषा थी, जिसने कालान्तर से साहित्यिक, प्राकृत का रूप धारण किया, जिससे महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और अर्धमागधी चार मुख्य भाषाएँ निकली। महाराष्ट्री इसमें प्रमुख मानी गयी है।

साहित्यिक प्राकृत को एक ओर छोड़ बोलचाल की भाषा 'अपभ्रंश' वेगवती होकर निरंतर प्रवाहित होने लगी जिसने आगे चलकर आधुनिक भारतीय भाषाओं को जन्म दिया। इस प्रकार

हिन्दुओं की अनेक बोलियाँ, साथ ही उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी के आगमन से अंग्रेजी भाषा का प्रार्दुभाव भारत में सर्व ओर व्याप्त था। भाषाओं के द्वारा ही मनुष्य के विचारों भावों का आदान-प्रदान संभव हैं। किन्तु भारत एक ऐसा देश है जहाँ हर प्रान्त में अलग भाषा बोली जाती है। जिससे लोगो के विचारों के आदान प्रदान में विध्न होता है। भाषा ही एकता, संस्कृति का प्रतीक है यदि भाषा एक ही जगह अनेक हो तो एकता की संभावना नहीं के बराबर हो जाती है। भारतीय भाषाओं में ही अनेक तरह की समस्यायें थी भाषा के संबंध में दो पक्ष अलग अलग हो गये थे।

पहला पक्ष शास्त्रीय पक्ष था जो भाषा को व्यवस्थित सुस्थित और परिमार्जित बनाने का इच्छुक है किन्तु जिसके प्रयत्नों के फलस्वरूप अन्त में भाषा की गति में अवरोध उत्पन्न होने की आशंका है। दूसरा पक्ष प्रजा पक्ष था, भाषा का सही प्रयोग न कर सकने वाले अगणित अनपढ़ जन समूह का पक्ष जिसकी उपेक्षा का अर्थ होगा उनकी भाषा से दूर होना। भाषाओं की प्रौढ़ता का ज्ञान हमें साहित्य के द्वारा ही होता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस संबंध में लिखा है कि- "प्रथम भाग में हिन्दी की पुरानी बोलियां बदलकर ब्रजभाषा अवधी और खड़ी बोली का रूप धारण करती है और दूसरे भाग में उनमें प्रौढ़ता आती है, तथा अन्त में अवधी और ब्रजभाषा का मिश्रण सा हो जाता है। उसी समय से हिन्दी गद्य का विकास नियमित रूप से आरंभ हुआ और खड़ी बोली का प्रयोग हिन्दी गद्य और पद्य दोनों में होने लगा।"५

भारत में बारह ऐसी भाषाएँ है जो पर्याप्त रूप से समृद्ध कही जा सकती है किन्तु इन भाषाओं में हिन्दी का ही समृद्ध होने का कारण यह है कि भारत के चौदह करोड़ नागरिक इसे बोलते हैं और कुछ को छोड़ प्रायः सभी समझते है। भारतीयों को एक ऐसी भाषा की आवश्यकता थी जिसे राज्य भाषा कहा जाय। प्रेमचंदजी ने अनुसार - "हमारे मुल्की फैलाव के साथ हमे एक ऐसी भाषा की जरूरत पड़ गयी जो सारे हिन्दुस्तान में समझी और बोली जाय.... हम सूबे की भाषाओं के विरोधी नहीं है, आप उनमें जितनी उन्नति कर सकें करें, लेकिन एक कौमी भाषा मरकजी का सहारा लिये बगैर आपके राष्ट्र की जड़ मजबूत नहीं हो सकती। अगर हमने कौमियत की सबसे बड़ी शर्त यानी कौमी जबान की तरफ से लापरवाही की तो इसका अर्थ यह होगा कि आपकी कौम को जिन्दा रखने के लिये अंग्रेजी की मरकजी हुकुमत का कायम रहना लाजिमी होगा, वर्ना कोई मिलानेवाली ताकत न होने के कारण हम सब बिखर जायेंगे और प्रान्तीयता जोर पकड़कर राष्ट्र का गला घोट देगी.. इस कौमी जबान के रास्ते में सबसे बड़ी रूकावट अंग्रेजी है, उसका बढ़ता हुआ प्रचार और हममे आत्म -सम्मान की वह कमी जो गुलामी की शर्म को महसूस नहीं करती।"६

भाषा में एक विशेषता होती है मनुष्य जिस भाषा को अपनाता है, उससे संस्कार, रहन-सहन बोलचाल सब कुछ उस भाषा के अनुरूप हो जाता है। अंग्रेजों व मुसलमानों के आगमन से

सैकडों हिन्दुओं ने अंग्रेजी भाषा की तरह उनके संस्कार रहन-सहन अपनाया। वहीं उर्दू के साथ-साथ मुसलमानों के संस्कारों को भी अपनाया। किन्तु फिर भी हिन्दी का ही वर्चस्व रहा। उसका कारण बताते हुये संतराम लिखते है "मैंने बी.ए. तक फारसी पढ़ी थी और मैं उस भाषा पर इतना मुग्ध था कि फारस में ही जाकर बस जाने के स्वप्न देखा करता था। परंतु लाहौर में आर्य समाज के संपर्क से मेरे विचार बदल गये। मुझे हिन्दी का महत्व समझ में आ गया। मैंने देखा ऋषि दयानंद का जन्म काठियावाड़ में हुआ। उस प्रदेश की बोली गुजराती है। वे धारा प्रवाह संस्कृत बोलते थे, परंतु उन्होंने अपना सारा प्रचार हिन्दी में किया। यहाँ तक कि अपना अमूल्य ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' भी उन्होंने गुजराती या संस्कृत में नहीं, राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही लिखा। वे इतने महान विभूति थे कि यदि वे 'सत्यार्थ प्रकाश' गुजराती भाषा में लिखते तो मेरे जैसे सहस्त्रों लाखों श्रद्धालु विवश होकर गुजराती सीखते।"७

ऋषि दयानंद के बाद हम महात्मा गांधी को देखते हैं उनका जन्म भी किसी हिन्दी प्रान्त का नहीं काठियावाड गुजरात का ही था। अंग्रेजी पर उनका मातृभाषा के समान अधिकार था। पर वे सदा हिन्दी में ही बोलते और प्रचार करते थे। गांधीजी के बाद जब मेरी दृष्टि अपने पंजाब के गुरू नानक, गुरू तेज बहादुर और गुरू गोविंद सिंह पर पड़ी तो क्या देखा कि पंजाब में जन्म लेकर भी उन्होंने हिन्दी के द्वारा ही प्रचार किया। सिख गुरूओं के इस भाषा को अपनाने का कारण यह था कि उस समय बिहार के पूर्वी छोर से लेकर पंजाब के पष्चिमी छोर तक, इस सारे विषाल प्रदेष में, एक ऐसी भाषा प्रचलित थी जिसका प्रयोग, क्या बाजार में, क्या न्यायालय में, प्रत्येक ऐसा व्यक्ति करता था जो चाहता था कि उसे सभ्य और सुषिक्षित समझा जाय। क्योंकि मनुष्य की भाषा से उसकी सभ्यता व ज्ञान व संस्कारों का अंदाजा लगाया जा सकता है।

निःसंदेह मनुष्य के लिये उसकी भाषा कैसी व कौनसी हो यह आवश्यक मुद्दा है। उस समय फारसी लिपि में लिखने से यह भाषा उर्दू कहलाने लगती थी और नागरी अक्षरों में लिखने पर इसी का नाम हिन्दी हो जाता था। महाराजा रणजीत सिंह ने सिख होते हुये भी अपनी न्यायालय की भाषा पंजाबी और लिपि गुरूमुखी क्यों नहीं बनाई? अंग्रेजों ने भी जब भारत में शासन की बागडोर संभाली तो उन्होंने बंगाल में बंगला को, गुजरात में गुजराती को और महाराष्ट्र में मराठी को राजभाषा बनाया। पंजाब में पंजाबी के स्थान में उन्होंने उर्दू को क्यों राजभाषा बनाया ? सन्तराम कहते है"मैंने तुलसीदास और सूरदास की कविता का रसास्वादन करने के लिये हिन्दी को नहीं अपनाया। मैं राष्ट्र की एकता चाहता हूँ।

भारत में हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है। भारत के किसी एक छोर से दूसरे छोर को चले जाइयें। आपको अवश्य एक बहुत बड़े हिन्दी प्रदेष में से होकर जाना पड़ेगा। इस भाषा को बोलने

और समझने वाले जितने लोग है, उतने भारत की किसी दूसरी आंचलिक बोली के नहीं। राष्ट्रीय एकता के लिये मैंने राष्ट्रभाषा हिन्दी को ही नहीं अपनाया वरन् प्रांतीयता और जात-पात की संकुचित और कुत्सित भावना को दूर करने के लिये अपना विवाह भी जात-पात और प्रांत से बाहर महाराष्ट्र में किया।"८ किसी भी मनुष्य के लिये उसकी मातृभाषा का विशेष महत्व होता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर लिखते हैं- "असल में उनकी सीख की कीमत मुझे आगे जाकर मालूम हुई। हमारे मन के विकास का पहलू हमें मातृभाषा में मिली हुई सीख ही है।" ९

शिक्षा के माध्यम में किसी भाषा को सीखने के लिये उस भाषा के महाकाव्यों को पढ़ाया जाता। अंग्रेजी भाषा का ज्ञान विशेष रूप से दिया जाता जिससे भारतीयों को अपनी मातृभाषा से हटकर दूसरी भाषा को पढ़ने में कठिनाई ही नहीं होती, बल्कि वह अपने संस्कारों को छोड़ उस भाषा के संस्कारों को समझना होता है। लोग इस तरह की शिक्षा को कैसे ग्रहण करते थे इस संबंध में सदगुरूषरण लिखते है- "अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने पढ़ाने की परिपाटी में वह विघार्थी कुछ कर नहीं सकता था जिसे अंग्रेजी रटने का अभ्यास न हो। फिर भी ऐसे व्यक्ति मौजूद है जो अंग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम बनाए रखने का आग्रह करते हैं।"१० देश को परतंत्र रखने में अपनी भलाई समझने वाले विदेशी शोषक का इसमें स्वार्थ था और थोड़ी बहुत अंग्रेजी पढ़ाकर अपने शासन के कामकाज के लिये क्लर्को को तैयार करना उनकी दूसरी योजना थी।

तब अपने-अपने संस्कारों व भाषा के हिसाब से शिक्षा ग्रहण करना हर एक की इच्छा रहती थी। अपने संस्कारों से हटकर कुछ करना उनके लिये मुश्किल था। जैसे अब्दुल कलाम अपनी शिक्षा के संबंध में लिखते है "हिन्दुस्तान में मुसलमानों की तालीम का पुराना ढंग यह था कि लड़कों को पहले फारसी पढ़ायी जाती थी और फिर अरबी। जब भाषा में उनकी अच्छी गति हो जाती थी तब उन्हें अरबी में दर्शन, ज्यामिति, गणित और बीज-गणित की शिक्षा दी जाती थी। इस्लामी धर्मशास्त्र का ज्ञान भी उनकी शिक्षा का एक अनिवार्य अंग था। उनका कहना था कि "मेरे वालिद पुराने तौर तरीकों को मानने वाले आदमी थे। पश्चिमी शिक्षा में उनकी आस्था बिल्कुल भी न थी और मुझे आधुनिक ढंग की शिक्षा देने की बात उन्होने कभी भी नहीं सोची थी। उनकी धारणा थी कि आधुनिक शिक्षा धार्मिक आस्था को नष्ट कर देती है और इसलिये उन्होंने पुराने परम्परागत ढंग से मुझे शिक्षा दिलाने का प्रबंध कर दिया।"११

आधुनिक युग में किन्तु आधुनिक शिक्षा व आधुनिक वातावरण से प्रभावित होकर लोग अंग्रेजी साहित्य व भाषा को भी महत्व देने लगे। इस तरह अंग्रेजों के भारत छोड़ने के समय अंग्रेजी जानने और बोलने वाला वर्ग ही भारत के राष्ट्रीय जीवन के सब क्षेत्रो में महत्वपूर्ण पदों पर आसीन था। अंग्रेजी प्रभाव के संबंध में विष्णु प्रभाकरजी लिखते हैं- "जब तक एक भी प्रान्त हिन्दी का विरोध

करता रहेगा, अंग्रेजी को नहीं हटाया जाएगा। आज भी अंग्रेजी उसी तरह से छाई हुई है, बल्कि उसका प्रभाव अधिक ही बढ़ गया है। सबसे अधिक दुःख इस बात का है कि जहाँ हिन्दीतर प्रान्तों में हिन्दी का विकास हुआ है वहाँ जिन प्रान्तों की मातृभाषा हिन्दी है, हिन्दी समाप्त होती जा रही है।"१२

स्वतंत्रोत्तर तीनों मुख्य भाषाये हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू में से किसको राजभाषा बनाया जाय इसके लिये अलग-अलग वर्ग बन गये। ज्यादातर लोग हिन्दी को ही राजभाषा बनाना चाहते थे, किन्तु जो लोग हिन्दी भाषा-भाषी नहीं है उनके मन में स्वभावतः यह भय होता था कि हिन्दी के राजभाषा बन जाने से वे लोग हिन्दी वालों की तुलना में उन बातों से किसी सीमा तक वंचित न रह जाये, जो राजभाषा द्वारा उपलब्ध हुआ करती है। जिस प्यारी हिन्दी को देश ने अपनी विभूति समझा, जिसको जनता ने उत्कंठापूर्वक दौड़कर अपनाया, उसको जन्म दिया भारतेन्दु श्री हरिशचंद्र ने भाषा के इस संघर्ष युग में उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में हिन्दी प्रचार आंदोलन का सूत्रपात हुआ। जिसमें बाबू श्यामसुंदरदास, पंडित रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार मिश्र ने नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की। इस आंदोलन के साथ-साथ उर्दू के साथ संघर्ष छिड़ गया।

उन्नीसवीं शताब्दी का अंतकाल और बीसवीं शताब्दी का आरंभ काल था, दुसरे उस समय के ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक एक प्रकार से सारे मानसिक उद्वेलन ने भाषा को अव्यस्थित कर रखा था। भाषा संबंधी ये सब कठिनाईयाँ थी। । मेरा यह विचार इसलिये न था कि मैं स्वयं हिन्दी भाषा-भाषी हूँ। न मेरा यह विचार इस हेतु था कि हिन्दी बोलने वालों की संख्या अन्य भाषा बोलने वालों की संख्या से अपेक्षातर अधिक है। यह भौगोलिक, आर्थिक और ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत का केन्द्र वह प्रदेश है जिसे प्राचीनकाल में मध्यप्रदेश कहा जाता था। उसी में होकर भारत के सब प्रसिद्ध यात्रा पथ जाते थे। उत्तरा पथ, दक्षिणा पथ इसी मध्य देश में मिलते थे और इस कारण इसी मध्यप्रदेश की बोली ही भारत के सन्तो, भारत के व्यापारियों, भारत के यात्रियों की बोली हो गयी थी। यदि भारत में गंगा की इतनी महिमा है तो वह लोगों की केवल मिथ्या धारणाओं या विश्वासों के कारण नहीं है। वास्तव में गंगा भारत का प्राण है। उसी गंगा के आस-पास का देश भारत के इतिहास के आरंभ से ही भारत का केन्द्र रहा है। अन्त में भारत की राजभाषा क्या हो इसका निर्णय स्वयं भारतीय इतिहास, भारतीय भूगोल, भारतीय अर्थतन्त्र ने कर दिया है। और इतिहास के इस निर्णय को हम सब को स्वीकार कर लेना चाहिये।"१३

हमारी भाषा, हमारी संस्कृति और हम सब भारत का अभिन्न अंग है। दिवाली हमारा राष्ट्रीय पर्व है। तुलसीदास के रामचरितमानस के बिना हमारे देश में हिन्दुओं का नाम भी शेष न रहता..। यह हमारी भारतीय भाषाओं की संस्कृति का ही असर था कि भारतीयो पर इसके संस्कारों का वर्चस्व रहा और इसका मुख्य कारण यह है कि हमारी संवेदनायें हमारी भाषाओं से जुड़ी होती है। अतः

भाषा को भावों की अनुगामिनी न मानकर भावों और संवेदनो की प्रकृति का भाषा द्वारा अनुशासित और निर्धारित होना माना जाता है। अतः आत्मकथाकार भी साहित्य सर्जन में मुख्य रूप से अंतरमंथन की भाषा, व्यक्तित्व, भावों की अभिव्यक्ति निर्धारित करता है। साहित्यकार की संवेदना व्यापक अनुभूतियों को व्यक्त करने का माध्यम उसकी भाषा ही है। इसलिये जो भाषा उसमें जिस हद तक विकसित और परिष्कृत होती है, उसी के अनुरूप उसके उपयोग करने वालों की संवेदना बनती है। जैसे रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते है- "रचनाकार को सृजन के पूर्व और बाद, दोनों ही स्थितियों में भाषा का प्रयोग करना है।

पहला रूप वह मुख्यतः समाज से ग्रहण करता है, और दूसरे रूप में वह अपने व्यक्तित्व को भी मिश्रित कर देता है, पर उसी हद तक कि उसकी भाषा उसके समाज के लिये प्रेषणीयता बनाये रख सकें। अतः भाषा का आधारभूत रूप वह है, जो रचनाकार समाज से स्वीकार करता है और उसी के अनुकूल उसकी संवेदना निखरती है।"१४ अतः स्पष्ट है कि साहित्कारों की मूल भाषा के संस्कारो की छाप उनके साहित्य, विचार और जीवन में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। तथा इस छाप के द्वारा ही हम भारतीयता का एक सम्यक दर्शन कर पाते है।

सन्दर्भग्रन्थ

१. अमृतराय, कलम का सिपाही, पृ. ५४८,
२. राहुल सांकृत्यायन, मेरी जीवन यात्रा, पृ. ३,
३. चतुरसेन शास्त्री, मेरी आत्मकहानी, पृ. १९,
४. चतुरसेन शास्त्री, मेरी आत्मकहानी, पृ. ५५,
५. सेठ गोविंददास, आत्मनिरीक्षण, पृ. २२५,
६. अमृतराय, कलम का सिपाही, पृ.५४८,
७. सतराम, मेरी जीवन के अनुभव, पृ.१५०,
८. सतराम, मेरे जीवन के अनुभव, पृ. १५१,
९. रवींद्रनाथ टैगोर, रविंद्रनाथ की आत्मकथा, पृ. ४१,
१०. सद्गुरुशरण अवस्थी, मार्ग के गहरे चिन्ह, पृ. ६४,
११. अब्दुल कलाम, आजादी की कहानी, पृ. २,
१२. विष्णु प्रभाकर, और पंछी उड़ गया, पृ. ११९
१३. सेठ गोविन्दास, आत्मनिरीक्षण, पृ. १५२,
१४. रामस्वरूप चतुर्वेदी, भाषा और संवेदना, पृ. ९५